

ताश्चतस्त्रोऽपि पर्याप्तय एकेन्द्रियाणामेव, न्यान्येषाम् । एकेन्द्रियाणां नोच्छ्वास-मुपलभ्यते चेन्न,
आर्षात्तदुपलभ्यात् । प्रत्यक्षेणागमो बाध्यत इति चेदभवत्वस्य बाधा
प्रत्यक्षात्प्रत्यक्षीकृताशेषप्रमेयात् । न चेन्द्रियजं प्रत्यक्षं समस्तवस्तुविषयं येन तदविषयीकृतस्य
वस्तुनोऽभावो विधीयते १ (मु. भेदीयते ।)

एवं पर्याप्त्यपर्याप्तीरभिधाय साम्प्रतममुष्मिन्नयं योगो भवत्यमुष्मिंश्च न भवतीति
प्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

ओरालियकायजोगो पञ्जत्ताणं ओरालियमिस्सकायजोगो अपञ्जत्ताणं२ (ओरालं
पञ्जते थावरकायादि जाव जोगो ति । तमिस्समपञ्जते चदुगुणठाणेसु णियमेण ॥ गो. जी.
६८०.) ॥ ७६ ॥

षड्भिः पञ्चभिश्चतसृभिर्वा पर्याप्तिभिर्निष्पन्नाः परिनिष्ठितास्तिर्यञ्चो मनुष्याश्च पर्याप्ताः
। किमेकया पर्याप्त्या निष्पन्नः पर्याप्तः उत साकल्येन निष्पन्न

वे चारों पर्याप्तियां एकेन्द्रिय जीवोंके ही होती हैं, दूसरोंके नहीं ।

शंका --- एकेन्द्रिय जीवोंके उच्छ्वास तो नहीं पाया जाता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, एकेन्द्रियोंके श्वासोच्छ्वास होता है यह बात आगम प्रमाणसे
जानी जाती है ।

शंका--- प्रत्यक्षसे यह आगम बाधित है?

समाधान --- जिसने संपूर्ण पदार्थों को प्रत्यक्ष कर लिया है ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाणसे यदि
बाधा संभव हो तो वह प्रत्यक्षबाधा कही जा सकती है । परंतु इन्द्रियप्रत्यक्ष तो संपूर्ण पदार्थोंका
विषय ही नहीं करता है, जिससे कि इन्द्रियप्रत्यक्षकी विषयताको नहीं प्राप्त होनेवाले पदार्थोंका
अभाव किया जाय ।

इसप्रकार पर्याप्ति और अपर्याप्तियोंका कथन करके अब इस जीवमें यह योग होता है
और इस जीवमें यह योग नहीं होता है, इसका कथन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---
औदारिककाययोग पर्याप्तकोंके और औदारिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंके होता है ॥ ७६ ॥

शंका --- छह पर्याप्ति, पांच पर्याप्ति अथवा चार पर्याप्तियोंसे पूर्णताको प्राप्त हुए तिर्यच और मनुष्य पर्याप्तक कहलाते हैं । तो क्या उनमेंसे किसी एक पर्याप्तिसे पूर्णताको प्राप्त हुआ पर्याप्तक कहलाता है या संपूर्ण पर्याप्तियोंसे पूर्णताको प्राप्त हुआ पर्याप्तक कहलाता है?

इति? शरीरपर्याप्त्या निष्पन्नः पर्याप्त इति भण्यते । तत्रौदारिककाययोगः निष्पन्न-शरीरावष्टम्भबलेनोत्पन्नजीवप्रदेशपरिस्पन्देन योगः औदारिककाययोगः । अपर्याप्तावस्थायामौदारिकमिश्रकाययोगः । कार्मणौदारिकस्कन्धनिबन्धनजीवप्रदेशपरिस्पन्देन योगः औदारिकमिश्रकाययोग इति यावत् । पर्याप्तावस्थायां कार्मणशरीरस्य सत्त्वात्त्राप्युभयनिबन्धनात्मप्रदेशपरिस्पन्द इति औदारिकमिश्रकाययोगः किमु न स्यादिति चेन्न, तत्र तस्य सतोऽपि जीवप्रदेशपरिस्पन्दस्याहेतुत्वात् । न पारम्पर्यकृतं तद्देतुत्वम्, तस्यौपचारिकत्वात् । न तदपि, अविवक्षितत्वात् । अथ स्यात्परिस्पन्दस्य बन्धहेतुत्वे संचरदभ्राणामति कर्मबन्धः प्रसजतीति, न, कर्मजनितस्य चैतन्यपरिस्पन्दस्यास्त्रवहेतुत्वेन विवक्षितत्वात् । न चाभ्रपरिस्पन्दः । कर्मजनितो येन तद्देतुतामास्कन्देत् ।

वैक्रियिककाययोगस्य सत्त्वोद्देशप्रतिपादनार्थमाह ---

समाधान --- सभी जीव शरीरपर्याप्तिकेनिष्पन्न होने पर पर्याप्तक कहे जाते हैं । उनमेंसे पहले औदारिककाययोगका लक्षण कहते हैं । पर्याप्तिको प्राप्त हुए शरीरके आलम्बनब्दारा उत्पन्न हुए जीवप्रदेश-परिस्पन्दसे जो योग होता है उसे औदारिककाययोग कहते हैं । और अपर्याप्त अवस्थामें औदारिकमिश्रकाययोग होता है । जिसका तात्पर्य इसप्रकार है कि कार्मण और औदारिकशरीरके स्कन्धोंके निमित्तसे जीवके प्रदेशोंमें उत्पन्न हुए परिस्पन्दसे जो योग होता है उसे औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं ।

शंका --- पर्याप्त अवस्थामें कार्मणशरीरका सद्भाव होनेके कारण वहां पर भी कार्मण और औदारिकशरीरके स्कन्धोंके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें परिस्पन्द होता है, इसलिये वहां पर भी औदारिक मिश्रकाययोग क्यों नहीं कहा जाता है?

समाधान ---नहीं, क्योंकि, पर्याप्त अवस्थामें यद्यपि कार्मणशरीर विद्यमान है फिर भी वह जीव-प्रदेशोंके परिस्पन्दका कारण नहीं है । यदि पर्याप्त-अवस्थामें कार्मणशरीर परंपरासे

जीवप्रदेशोंके परिस्पन्दका कारण कहा जावे, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, कार्मणशरीरको परंपरासे निमित्त मानना उपचार है। यदि कहें कि उपचारका भी यहां पर ग्रहण कर लिया जावे, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, उपचारसे परंपरारूप निमित्तके ग्रहण करनेकी यहां विवक्षा नहीं है।

शंका --- परिस्पन्दको बन्धका कारण मानने पर संचार करते हुए मेघोंके भी कर्मबन्ध प्राप्त हो जायगा, क्योंकि, उनके भी परिस्पन्द पाया जाता है।

समाधान --- नहीं, क्योंकि, कर्मजनित चैतन्यपरिस्पन्द ही आस्त्रवका कारण है, यह अर्थ यहां पर विवक्षित है। मेघोंका परिस्पन्द कर्मजनित तो है नहीं, जिससे वह कर्मबन्धके आस्त्रवका हेतु हो सके, अर्थात् नहीं हो सकता है।

अब वैक्रियिककाययोगके सत्त्वोद्देशके प्रतिपादन करने के लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

वेउव्वियकायजोगो पञ्जत्ताणं वेउव्वियमिस्सकायजोगो अपञ्जत्ताणं १ (बेगुव्वं पञ्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सं तु । गो. जी. ६८१) ॥ ७७ ॥

पर्याप्तावस्थायां वैक्रियिककाययोगे सति तत्र शेषयोगाभावः स्यादिति चेन्न, तत्र वैक्रियिककाययोग एवास्तीत्यवधारणाभावात् । अवधारणाभावेऽपर्याप्तावस्थायां शेषयोगानामपि सत्त्वमापतेदिति चेत्सत्यम् कार्मणकाययोगस्य सत्त्वोलभात् । न तद्वत्तत्र वाङ्मनसयोरपि सत्त्वमपर्याप्तानां तयोरभावस्योक्तत्वात् ।

आहारकाययोगसत्त्वप्रदेशप्रतिपादनायाह---

आहारकायजोगो पञ्जत्ताणं आहारमिस्सकायजोगो अपञ्जत्ताणं २ (आहारो पञ्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सो दु । गो. जी. ६८३.)^{६७८}

आहारशरीरोत्थापकः पर्याप्तः, संयतत्वान्यथानुपपत्तेः । तथा चाहारमिश्रकाय---

वैक्रियिककाययोग पर्याप्तकोंके और वैक्रियिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंके होता है ॥ ७७ ॥

शंका --- पर्याप्त अवस्थामें वैक्रियिककाययोगके होने पर वहां शेष योगोंका अभाव प्राप्त होता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, पर्याप्त अवस्थामें वैक्रियिककाययोग ही होता है ऐसा निश्चयरूप (अवधारणरूप) कथन नहीं किया है।

शंका --- जब की उक्त कथन निश्चयरूप नहीं है तो अपर्याप्त अवस्थामें भी उसी प्रकार शेष योगोंका सद्भाव प्राप्त हो जायगा?

समाधान --- यह कहना किसी अपेक्षासे ठीक है, क्योंकि, अपर्याप्त अवस्थामें वैक्रियिकमिश्रके अतिरिक्त कार्मणकाययोगका भी सद्भाव पाया जाता है। किन्तु कार्मणकाययोगके समान अपर्याप्त अवस्थामें वचनयोग और मनोयोगका सद्भाव नहीं माना जा सकता है, क्योंकि, अपर्याप्त अवस्थामें इन दोनों योगोंका अभाव रहता है, यह बात पहले कही जा चुकी है।

अब आहारककाययोगके अस्तित्वका आधार बतलानेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---
आहारककाययोग पर्याप्तकोंके और आहारकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंके होता है ॥७८॥

शंका --- आहारकशरीरको उत्पन्न करनेवाला साधु पर्याप्तक ही होता है, अन्यथा उसके संयतपना नहीं बन सकता है। ऐसी हालतमें आहारकमिश्रकाययोग अपर्याप्तक के होता

योगोऽपयोप्तकस्येति न घटामटेदिति चेन्न, अनवगतसूत्राभिप्रायत्वात् । तद्यथाभवत्वसौ पर्याप्तकः औदारिकशरीरगतष्टपर्याप्त्यपेक्षया, आहारशरीरगतपर्याप्ति-निष्फल्यभावापेक्षया त्वपर्याप्तकोऽसौ । पर्याप्तापर्याप्तत्वयोर्नैकत्राक्रमेण संभवः विरोधादिति चेन्न, पर्याप्तापर्याप्तयोगयोरक्रमेणैकत्र न सम्भवः इतीष्टत्वात् । कथं न पूर्वोऽभ्युगमः इति विरोध इति चेन्न, भूतपूर्वगतिः (मु. गत ।) न्यायापेक्षया, विरोधासिध्देः ।

विनष्टौदारिकशरीरसम्बन्धष्टपर्याप्तेरपरिनिष्ठिताहारशरीरगतपर्याप्तेरपर्याप्तकस्य कथं संयम इति चेत् ? न, संयमस्यास्त्रवनिरोधलक्षणस्य मन्दयोगेन सह विरोधासिध्देः । विरोधे वा न केवलिनोऽपि समुद्धातगतस्य संयमः, तत्राप्यपर्याप्तकयोगास्तित्वं

है यह कथन नहीं बन सकता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, ऐसा कहनेवाला आगमके अभिप्रायको ही नहीं समझा है । आगमका अभिप्राय तो इस प्रकार है कि आहारशरीरको उत्पन्न करनेवाला साधु औदारिक शरीरगत छह पर्याप्तियोंकी अपेक्षा पर्याप्तक भले ही रहा आवे, किन्तु आहारकशरीरसंबन्धी पर्याप्तियोंके पूर्ण होनेकी अपेक्षा वह अपर्याप्तक है ।

शंका --- पर्याप्त और अपर्याप्तपना एकसाथ एक जीवमें संभव नहीं है, क्योंकि, एकसाथ एक जीवमें इन दोनोंके विरोध आता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, एकसाथ एक जीवमें पर्याप्त और अपर्याप्तसंबन्धी योग संभव नहीं हैं, यह बात हमें इष्ट ही है ।

शंका --- तो फिर हमारा पूर्व कथन क्यों न मान लिया जाय, अतः आपके कथनमें विरोध आता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, भूतपूर्व का ज्ञान करानेवाले न्यायकी अपेक्षा विरोध असिद्ध है। अर्थात् औदारिक शरीरसंबन्धी पर्याप्तपनेकी अपेक्षा आहारकमिश्र अवस्थामें भी पर्याप्तपनेका व्यवहार किया जा सकता है।

शंका---जिसके औदारिक शरीरसंबन्धी छह पर्याप्तियां नष्ट हो चुकी हैं, और आहारक शरीरसंबन्धी पर्याप्तियां अभी तक पूर्ण नहीं हुई हैं ऐसे अपर्याप्तक साधुके संयम कैसे हो सकता है?

समाधान---नहीं, क्योंकि, जिसका लक्षण आस्त्रवका निरोध करना है ऐसे संयमका मन्दयोग (आहारकमिश्रयोग) के साथ होनेमें कोई विरोध नहीं आता है। यदि इस मन्द-योगके साथ संयमके होनेमें विरोध आता ही है ऐसा माना जावे, तो समुद्धातको प्राप्त हुए केवलीके भी संयम नहीं हो सकेगा, क्योंकि, यहां पर भी अपर्याप्तकसंबन्धी योगका सद्भाव पाया जाता है इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

प्रत्यविशेषात् । ‘संजदासंजद-संजदद्वाणे १ (मु. संजदासंजदद्वाणे) णियमा पज्जता’ इत्यनेनार्षेण सह कथं न विरोधः स्यादिति चेन्न, द्रव्यार्थिकनयापेक्षया प्रवृत्तसूत्रस्याऽर (मु. प्रवृत्तसूत्रस्या) भिग्रायेणाहारशरीरानिष्पत्यवस्थायामपि षट्पर्याप्तीनां सत्त्वाविरोधात् । कार्मणकाययोगः पर्याप्तेष्वपर्याप्तेष्वभयत्र वा भवतीति नोक्तम्, तन्निश्चयः कुतो भवेत् ? ‘कम्मझयकायजोगो विग्गहग्ग-समावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घाद-गदाणं३ (जी. सं. सू. ६०)’ इत्येतस्मात्सूत्रादपर्याप्तेष्वेव कार्मणकाययोग इति निश्चीयते ।

पर्याप्तिष्वपर्याप्तिषु च योगानां सत्त्वमसत्त्वं चाभिधायेदानीं गतिषु तत्र गुणस्थानानां सत्त्वासत्त्वप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह---

णेरइया मिच्छाइड्वि-असंजदसम्माइड्विड्वाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ७९ ॥

नारका इत्यनेन बहुवचनेन स्यादित्येतरस्य एकवचनस्य न सामानाधिकरण्य-

शंका --- 'संयतासंयत और संयतके सभी गुणस्थानोंमें जीव नियमसे पर्याप्तक होते हैं ' इस आर्षवचनके साथ पूर्वोक्त कथनका विरोध क्यों नहीं आजायगा?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे प्रवृत्त हुए इस सूत्रके अभिप्रायसे आहारक शरीरकी अपर्याप्त अवस्थामें भी औदारिक शरीरसंबन्धी छह पर्याप्तियोंके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका --- कार्मणकाययोग पर्याप्त होने पर होता है, या अपर्याप्त रहने पर होता है, अथवा दोनों अवस्थाओंमें होता है, यह कुछ भी नहीं कहा, इसलिये इसका निश्चय कैसे किया जाय?

समाधान --- 'विग्रहगतिको प्राप्त चारों गतिके जीवोंके और समृद्धातगत केवलियोंके कार्मणकाययोग होता है' इस सूत्रके कथनानुसार अपर्याप्तकोंके ही कार्मणकाययोग होता है, इस कथनका निश्चय हो जाता है।

इसप्रकार पर्याप्ति और अपर्याप्तियोंमें योगोंके सत्त्व और असत्त्वका कथन करके अब चार गतिसंबन्धी पर्याप्ति और अपर्याप्तियोंमें गुणस्थानोंके सत्त्व और असत्त्वके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

नारकी जीव मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यगदृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्तक भी होते हैं और अपर्याप्तक भी होते हैं ॥ ७९ ॥

शंका --- सूत्रमें आये हुए 'नारकः' इस बहुवचनके साथ 'स्यात्' इस एक वचनका समानाधिकरण नहीं बन सकता है?

मिती चेन्न, एकस्य नानात्मकस्य नानात्वाविरोधात् । विरुद्धयोः कथमेकमधिकरण-मिती चेन्न, दृष्टत्वात् । न हि दृष्टेऽनुपपन्नता १ (स्वभावेऽध्यक्षतः सिद्धे यदि पर्यनुयुज्यते । तत्रोत्तरमिदं युक्तं न दृष्टेऽनुपपन्नता ॥ स. त. पृ. २६.) नारकः मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यगदृष्टयश्च पर्याप्ताश्चापर्याप्ताश्च भवन्ति । समुच्चयावगतये चशब्दोऽत्र वक्तव्यः? न, सामर्थ्यलभ्यत्वात् ।

तत्रतनशेषगुणव्यप्रदेशप्रतिपादनार्थमाह---

सासणसम्माइड्वि-सम्मामिच्छाइड्वि-बृणे णियमा पज्जत्ता ॥ ८० ॥

नारकाः निष्पन्नषट्पर्याप्तयः सन्तः एताभ्यां२ (मु. ताभ्यां ॥) गुणाभ्यां परिणमन्ते नापर्याप्तावस्थायाम् । किमिति तत्र तौ नोप्तद्येते इति चेत्योस्तत्रोत्पत्तिनिमित्तपारिणामा-

समाधान --- नहीं, क्योंकि, एक भी नानात्मक होता है, इसलिये एकको नानारूप होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका---विरुद्ध दो पदार्थोंका एकाधिकरण कैसे हो सकता है ?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, विरुद्ध दो पदार्थोंका भी एकाधिकरण देखा जाता है । और देखे गये कार्यमें यह नहीं बन सकता यह कहा नहीं जा सकता है । अतः सिध्द हुआ कि मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यगदृष्टि नारकी पर्याप्तक भी होते हैं और अपर्याप्तक भी होते हैं ।

शंका --- समुच्चयका ज्ञान करानेकेलिये इस सूत्रमें च शब्दका कथन करना चाहिये?

समाधान ---- नहीं, क्योंकि, वह सामर्थ्यसे ही प्राप्त हो जाता है ।

अब नारकसंबन्धी शेष दो गुणस्थानोंके आधारके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

नारकी जीव सासादनसम्यगदृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ८० ॥

जिनकी छह पर्याप्तियां पूर्ण हो गई हैं ऐसे नारकी ही इन दो गुणस्थानोंके साथ परिणत होते हैं, अपर्याप्त अवस्थामें नहीं ।

शंका --- नारकियोंकी अपर्याप्त अवस्थामें ये दो गुणस्थान क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, नारकियोंकि अपर्याप्त अवस्थामें इन दो गुणस्थानोंकी उत्पत्तिके निमित्तभूत परिणामोंका अभाव है, इसलिये उनकी अपर्याप्त अवस्थामें ये दो गुणस्थान नहीं होते हैं ।

भावात् । सोऽपि किमिति तयोर्न स्यादिति चेत्स्वाभावात् ।
 नारकाणामग्निसम्बन्धादभस्मसाभदावमुपगतानां पुनर्भस्मनि समुत्पद्यमानानामपर्याप्ताधायां
 गुणव्यस्य सत्त्वाविरोधान्तियमेन पर्याप्ता इति न घटत इति चेन्न, तेषां मरणाभावात् । भावे वा न
 ते तत्रोत्पद्यन्ते, ‘ णिरयादो णेरइया उब्डिदसमाणां (मु. उब्डिदसमाणा ।)’ णो णिरयगदिं
 जंति णो देवगदिं जंति, तिरिक्खगदिं मणुसगदिं न जंति २ (मु. ‘ जन्ति ’ स्थाने सर्वत्र ‘ जादि ’
 इति ।) इत्यनेनार्थेण निषिद्धत्वात् । आयुषोऽवसाने म्रियमाणानामेष नियमश्चेन्न,
 तेषामपमृत्योरसत्त्वात् । भस्मसाभदाव-मुपगतदेहान्ना तेषां कथं पुनरमरणमिति ३ (मु.
 पुनर्मरणमिति ।) चेन्न देहविकारस्यायुर्विच्छिन्निमित्तत्वात् । अन्यथा बालावस्थातः
 प्राप्तयौवनस्यापि मरणप्रसङ्गात् ।

शंका --- इस प्रकारके परिणाम उन दो गुणस्थानोंमें क्यों नहीं होते हैं?

समाधान --- क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है ।

शंका ---- अग्निके संबन्धसे भस्मीभावको प्राप्त हुए और फिर भी उसी भस्ममें उत्पन्न
 होनेवाले नारकियोंके अपर्याप्त कालमें इन दो गुणस्थानोंके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है,
 अर्थात् छेदन भेदन आदिसे नष्ट हुए शरीरके पश्चात् पुनः उन्हीं अवयवोंमें उत्पन्न होनेवाले
 जीवोंके सासादन और मिश्र गुणस्थान माननेमें कोई विरोध नहीं आता है, इसलिये इन
 गुणस्थानोंमें नारकी नियमसे पर्याप्तक होते हैं, यह नियम नहीं बनता है ?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, अग्नि आदि निमित्तोंसे नारकियोंका मरण नहीं होता है ।
 यदि नारकियोंका मरण हो जावे, तो पुनः वे वहीं पर उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि ‘जिनकी आयु
 पूर्ण हो गई है ऐसे नारकी जीव नरकगतिसे निकलकर पुनः नरकगतिको नहीं जाते हैं,
 देवगतिको नहीं जाते हैं । किंतु तिर्यचगति और मनुष्यगतिको जाते हैं’ इस आर्ष वचनके अनुसार
 नारकियोंका पुनः नरकगतिमें उत्पन्न होना निषिद्ध है ।

शंका --- आयुके अन्तमें मरनेवाले नारकियोंके लिये ही यह सूत्रोक्त नियम लागू होना
 चाहिये?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, नारकी जीवोंके अपमृत्युका सद्भाव नहीं पाया जाता है ।
अर्थात् नारकियोंका आयुके अन्तमें ही मरण होता है, बीचमें नहीं ।

शंका --- यदि उनकी अपमृत्यु नहीं होती है, तो जिनका शरीर भस्मीभावको प्राप्त हो गया है ऐसे नारकियोंका मरण नहीं होता यह कैसे बनेगा?

समाधान --- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, देहका विकार आयुकर्मके विनाशका निमित्त नहीं है । अन्यथा जिसने बाल-अवस्थाके पश्चात् यौवन-अवस्थाको प्राप्त कर लिया है ऐसे जीवके भी मरणका प्रसंग आ जायगा ।

नारकाणामोघमभिधायादेशप्रतिपादनार्थमाह---

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ ८१ ॥

प्रथमायां पृथिव्यां ये नारकास्तेषां नारकाणां सामान्योक्तरुपेण भवन्ति, ततोऽ (मु. कुतो?) विशेषाभावात् । यदि सामान्यप्ररुपणया प्रथमपृथिवीगतनारका एव निरुपिता भवेयुरलं तया, विशेषनिरुपणतयैव तदवगतेरिति ? न, द्रव्यार्थिकसत्त्वानुग्रहार्थऽ (मु. द्रव्यार्थिकनयात् सत्त्वा) तत्प्रवृत्तेः । विशेषप्ररुपणमन्तरेण न सामान्यप्ररुपणतोऽर्थावगतिर्भवतीति तथा निरुपणमनर्थकमिति चेत् ? न, बुधीनां वैचित्र्यात् । तथाविधबुद्धयो नेदानीमुपलभ्यन्त इति चेन्न, अस्यार्षस्य त्रिकालगोचरानन्तप्राण्यपेक्षया प्रवृत्तत्वात् ।

शेषपृथिवीनारकाणां प्रतिपादनार्थमाह---

इस प्रकार सामान्यरूपसे नारकियोंका कथन करके अब विशेषरूपसे कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं---

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकी होते हैं ॥ ८१ ॥

प्रथम पृथिवीमें जो नारकी रहते हैं उनकी पर्याप्तियां और अपर्याप्तियां नरकगतिके सामान्य कथनके अनुसार होती हैं, क्योंकि, नरकगतिसंबन्धी सामान्य कथनमें और प्रथम पृथिवीसंबन्धी कथनमें कोई विशेषता नहीं है ।

शंका--- यदि सामान्यप्ररूपणाके द्वारा प्रथम पृथिवीसंबन्धी नारकी ही निरुपित किये गये हैं, तो सामान्यप्ररूपणाके कथन करनेसे रहने दो, क्योंकि, विशेषप्ररूपणासे ही उसका ज्ञान हो जायगा?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, सामान्य प्ररूपणाकी अपेक्षा रखनेवाले जीवोंके अनुग्रहके लिये सामान्यप्ररूपणाकी प्रवृत्ति होती है ।

शंका --- विशेषप्ररूपणाके विना केवल सामान्यप्ररूपणासे अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है, ऐसी हालतमें सामान्यप्ररूपणाका कथन करना निष्फल है ।

समाधान --- नहीं, क्योंकि, श्रोताओंकी बुधिं अनेक प्रकारकी होती है, इसलिये विशेष प्ररूपणाके कथन के समान सामान्यप्ररूपणाका कथन करना भी निष्फल नहीं है ।

शंका --- जो सामान्यसे पदार्थको समझ लेते हैं ऐसे बुद्धिमान् पुरुष इस कालमें तो नहीं पाये जाते हैं ?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, यह आगम त्रिकालमें होनेवाले अनन्त प्राणियोंकी अपेक्षा प्रवृत्त हुआ है ।

शेष पृथिवियोंमे रहनेवाले नारकियोंके विशेष कथनके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

विदियादि १ (अ. ब. क. विदियाए) जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छाइड्हि-ड्हाणे सिया
पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ८२ ॥

अधस्तनीषु षट्सु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टिनामुत्पत्तेः सत्त्वात् । पृथिवीशब्दः
प्रत्येकमभिसम्बन्धनीयः । सुगममन्यत् ।

शेषगुणस्थानानां तत्र क्व सत्त्वं क्व च न भवेदिति जातारेकस्य भव्यस्यारेका
निरसनार्थमहा ---

सासणसम्माइड्हि--सम्मामिच्छाइड्हि--असंजदसम्माइड्हि णियमा पज्जत्ता ॥ ८३ ॥

भवतु नाम सम्यग्मिथ्यादृष्टेस्तत्रानुत्पत्तिः, सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामम-धिष्ठितस्य जीवस्य
मरणाभावात् २ (मु. धिष्ठितस्य मरण ।) भवति च तस्य मरणं गुणान्तरमुपादाय । न च तत्र स
गुणोऽस्तीति । किन्त्वेतन्न युज्यते शेषगुणस्थानप्राणिनस्तत्र नोत्पद्यन्त इति ?

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवी तक रहनेवाले नारकी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८२ ॥

प्रथम पृथिवीको छोड़कर शेष छह पृथिवियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंकी ही उत्पत्ति पाई जाती है, इसलिये यहां पर प्रथम गुणस्थानमें पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों अवस्थायें बतलाई गई हैं। सूत्रमें आया हुआ पृथिवी शब्द प्रत्येक नरकके साथ जोड़ लेना चाहिये । शेष व्याख्यान सुगम है।

उन पृथिवीयोंकी किस अवस्थामें शेष गुणस्थानोंका सद्भाव है और किस अवस्थामें नहीं, इस प्रकार जिसको शंका उत्पन्न हुई है उस भव्यकी शंकाके दूर करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवी तक रहनेवाले नारकी सासादनसम्यगदृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यगदृष्टि गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ८३ ॥

शंका --- सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवकी मरकर शेष छह पृथिवियोंमें उत्पत्ति मत होओ, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वरूप परिणामको प्राप्त हुए जीवका मरण नहीं होता। परन्तु उसका दूसरे गुणस्थानको प्राप्त होकर मरण होता है। परन्तु मरणकालमें वह गुणस्थान नहीं होता, यह सब ठीक है। किंतु शेष (दूसरे, चौथे) गुणस्थानवाले जीव मरकर वहां पर उत्पन्न नहीं होते, यह कहना नहीं बनता?

समाधान --- ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, कारण कि सासादन गुणस्थानवाला तो नरकमें उत्पन्न होता नहीं है, क्योंकि, सासादन गुणस्थानवाले के नरकायुका बन्ध नहीं होता।

नैव वक्तव्यम्, कुतः ? न तावत्^१ (मु. इति? न तावत्) सासादनस्तत्रोत्पद्यते, तस्य नरकायुषो बन्धाभावात् । नापि बध्दनरकायुषः सासादनं प्रतिपद्य नारकेषूत्पद्यते, तस्य तस्मिन् गुणे मरणाभावात् । नासंयतसम्यगदृष्टयोऽपि तत्रोत्पद्यान्ते. तत्रोत्पत्तिनिमित्ताभावात् । न तावत्कर्मस्कन्धबहुत्वं तस्य तत्रोत्पत्तेः कारणम्, क्षणितकर्माशानामपि जीवानां तत्रोत्पत्तिदर्शनात् । नापि कर्मस्कन्धाणुत्वं तत्रोत्पत्तेः कारणम्, गुणितकर्माशानामपि तत्रोत्पत्तिदर्शनात् । नापि नरकगतिकर्मणः सत्त्वं तस्य तत्रोत्पत्तेः कारणम्, तत्सत्त्वं प्रत्यविशेषतः सकलपञ्चेन्द्रियाणामपि नरकप्राप्तिप्रसङ्गात् । नित्यनिगोदानामपि विद्यमानत्रसकर्मणां त्रसेषूत्पत्तिप्रसङ्गात् । नाशुभलेश्यानां सत्त्वं तत्रोत्पत्तेः कारणम्, मरणावस्थायामसंयतसम्यगदृष्टेः

षट्पृथिवीषूत्पत्तिनिमित्ताशुभलेश्याभावात् २ (मु. षट्सु पृथिवीषू ।) न नरकायुषः सत्त्वं तस्य
तत्रोत्पत्तेः कारणम्, सम्यग्दर्शनासिना छिन्नषट्पृथिव्यायुष्कत्वात् । न च तच्छेदोऽसिध्वः,
आर्षात्तत्सिध्वचुपलम्भात् । ततः स्थितमेतत् न सम्यग्दृष्टिः षट्सु पृथिवीषूत्पद्यते इति ।

जिसने पहले नरकायुका बन्ध कर लिया है ऐसा जीव भी सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर नारकियोंमे नहीं उत्पन्न होता है, क्योंकि, नरकायुका बन्ध करनेवाले जीवका सासादन गुणस्थानमें मरण नहीं होता । असंयतसम्यग्दृष्टि जीव भी मरकर द्वितीयादि पृथिवियोंमे उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि, सम्यग्दृष्टियोंके शेष छह पृथिवियोंमे उत्पन्न होनेके निमित्त नहीं पाये जाते । यदि कर्मस्कन्धोंकी अधिकता असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके शेष छह नरकोंमे उत्पत्तिका कारण कहा जावे, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, क्षपित कर्माशिक जीवोंकी भी नरकमें उत्पत्ति देखी जाती है । कर्मस्कन्धोंकी अल्पता भी नरकमें उत्पत्तिका कारण नहीं है, क्योंकि गुणित कर्माशिक जीवोंकी भी वहां पर उत्पत्ति देखी जाती है । नरकगतिका सत्त्व भी सम्यग्दृष्टिके नरकमें उत्पत्तिका कारण कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, नरकगतिके सत्त्वके प्रति कोई विशेषता न होनेसे सभी पंचेद्रिय जीवोंको नरकगतिकी प्राप्तिका प्रसंग आ जायेगा । तथा नित्यनिगोदिया जीवोंके भी त्रसकर्मकी सत्ता विद्यमान रहती है, इसलिये उनकी भी त्रसोंमें उत्पत्ति होने लगेगी । अशुभ लेश्याके सत्त्वको नरकमें उत्पत्तिका कारण कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, मरणके समय असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके नीचेकी छह पृथिवियोंमें उत्पत्तिकी कारणरूप अशुभ लेश्याएं नहीं पाई जाती हैं । नरकायुका सत्त्व भी सम्यग्दृष्टिके नीचेकी छह पृथिवियोंमें उत्पत्तिका कारण नहीं है, क्योंकि, सम्यग्दर्शनरूपी खड़गसे नीचेकी छह पृथिवीसंबन्धी आयु काट दी जाती है । और नीचेकी छह पृथिवीसंबन्धी आयुका कटना असिध्व भी नहीं है, क्योंकि, आगमसे इसकी पुष्टि होती है । इसलिये यह सिध्द हुआ कि नीचेकी छह पृथिवियोंमें सम्यग्दृष्टि जीव मर कर उत्पन्न नहीं होता है ।

तिर्यग्गतौ गुणस्थानानां सत्त्वावस्थाप्रतिपादनार्थमाह ---

तिरिक्खा मिच्छाइड्वि-सासणसम्माइड्वि-असंजदसम्माइड्वि-द्वाणे सिया पज्जत्ता, सिया

भवतु नाम मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यगदृष्टीनां तिर्यक्षु पर्याप्तापर्याप्तव्योः सत्त्वं, तयोस्तत्रोत्पत्त्यविरोधात् । सम्यगदृष्ट्यस्तु पुनर्नोत्पद्यान्ते, तिर्यगपर्याप्तपर्यायेण सम्यगदर्शनस्य विरोधादिति ? न विरोधः, अस्यार्षस्याप्रामाण्यप्रसङ्गात् । क्षायिक-सम्यगदृष्टिः सेवितीर्थकरः क्षणितसप्तप्रकृतिः कथं तिर्यक्षु दुःखभूयस्सूत्पद्यते इति चेन्न, तिरश्चां नारकेभ्यो दुःखाधिक्याभावात् । नारकेभ्यपि सम्यगदृष्ट्यो नोत्पत्त्यन्त इति चेन्न, तेषां तत्रोत्पत्तिप्रतिपादकार्षोपलभ्नात् । ((ऐरड़या) सम्मतेण अधिगदा सम्मतेण चेव णीति । जी. चू. सू. २६७.)^९ किमिति ते तत्रोत्पद्यन्त इति चेन्न, सम्यगदर्शनोपादानात् प्राङ्गः मिथ्यादृष्ट्यवस्थायां बध्वतिर्यङ्गःनरकायुष्कत्वात् ।

अब तिर्यचगतिमें गुणस्थानोंके सद्भाव के प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं

तिर्यच मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यगदृष्टि और असंयतसम्यगदृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८४ ॥

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यगदृष्टि जीवोंकी तिर्यचोंसंबन्धी पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्थामें भले ही सत्ता रही आवे, क्योंकी, इन दो गुणस्थानोंकी तिर्यचसंबन्धी पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्थामें उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । परंतु सम्यगदृष्टि जीव तो तिर्यचोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि, तिर्यचोंकी अपर्याप्त पर्यायके साथ सम्यगदर्शनका विरोध है ?

समाधान --- विरोध नहीं है, फिर भी यदि विरोध माना जावे तो यह सूत्रवचन अप्रमाण हो जायगा ।

शंका --- जिसने तीर्थकरकी सेवा की है और जिसने मोहनीयकी सात प्रकृतियोंका क्षय कर दिया है ऐसा क्षायिक सम्यगदृष्टि जीव दुःखबहुल तिर्यचोंमें कैसे उत्पन्न होता है ?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, तिर्यचोंके नारकियोंसें अधिक दुःख नहीं पाये जाते हैं ।

शंका --- तो फिर नारकियोंमें भी सम्यगदृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होंगे ?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, सम्यगदृष्टियोंकी नारकियोंमें उत्पत्तिका प्रतिपादन करनेवाला आगम-प्रमाण पाया जाता है ।

शंका --- सम्यगदृष्टि जीव नारकियोंमें क्यों उत्पन्न होते हैं ?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, जिन्होंने सम्यगदर्शनको ग्रहण करनेके पहले मिथ्यादृष्टि अवस्थामें तिर्यचायु और नरकायुका बन्ध कर लिया है उनकी सम्यगदर्शनके साथ वहां पर उत्पत्ति होनेमें कोई आपत्ति नहीं आती है।

सम्यगदर्शनेन तत् किमिति न छिद्यते इति चेत् ? किमिति तन्न छिद्यते? अपि तु न तस्य निर्मूलच्छेदः । तदपि कुतः ? स्वाभाव्यात् ।

तत्र सम्यग्मित्यादृष्ट्यादिस्वरूपनिरूपणार्थमाह ---

सम्माप्तिच्छाइड्वि-संजदासंजद-द्वाणे णियमा पञ्जता ॥ ८५ ॥

मनुष्याः मिथ्यादृष्ट्यवस्थायां बध्दतिर्यगायुषः पश्चात्सम्यगदर्शनेन सहात्ताप्रत्याख्यानाः
क्षपितसप्तप्रकृतयस्तिर्यक्षु किन्नोत्पद्यते इति चेत्? न,
देवगतिव्यतिरिक्तगतित्रयसम्बद्धायुषोपलक्षितानामणुव्रतोपादानबुध्यनुत्पत्तेः । उक्तं च १ --(अ.
प्रतौ 'उक्तं च' प्रभृति 'चत्तारि वि छेत्ताइं 'इत्यादिगाथा नास्ति ।)

चत्तारि वि छेत्ताइं आउग बंधेण२ (मु. बंधे वि ।) होइ सम्मतं

अणुवद-महवदाइं ण लहइ देवायुगं मोत्तुं३ (प्रा. पं. १, २०१^९ जी. ६५३.
गो. क. ३३४^९) ॥ १६९ ॥

शंका --- सम्यगदर्शनकी सामर्थ्यसे उस आयुका छेद क्यों नहीं हो जाता है?

समाधान --- उसका छेद क्यों नहीं होता है? अवश्य होता है, किंतु उसका समूल नाश नहीं होता है ।

शंका --- समूल नाश क्यों नहीं होता?

समाधान --- बांधे हुए आयुकर्मका समूल नाश नहीं होता है इस प्रकारका स्वभाव ही है ।

अब तिर्यचोंमे सम्यग्मित्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंके स्वरूपका निरूपण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

तिर्यच सम्यग्मित्यादृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ८५ ॥

शंका --- जिन्होंने मिथ्यादृष्टि अवस्थामें तिर्यचायुका बन्ध करनेके पश्चात् सम्यगदर्शनके साथ देशसंयमको ग्रहण कर लिया है और मोहकी सात प्रकृतियोंका क्षय कर दिया है ऐसे मनुष्य

तिर्यचोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते? यदि होते हैं तो इससे तिर्यच-अपर्याप्तोंमें देशसंयमके प्राप्त होनेकी आपत्ति आती है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, देवगतिको छोड़कर शेष तीन गतिसंबन्धी आयुबन्धसे युक्त जीवोंके अणुव्रतको ग्रहण करनेकी बुधि ही उत्पन्न नहीं होती है। कहा भी है ---

चारों गतिसंबन्धी आयुकर्मके बन्ध हो जाने पर भी सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो सकता

न तिर्यक्षूत्पन्ना अपि क्षायिकसम्यग्दृष्ट्योऽणुव्रतान्याददत्तेऽ (मु. न्यादधते I),
भोगभूमावुत्पन्नानां तदुपादानानुपपत्तेः। ये निर्दानास्ते कथं तत्रोत्पद्यन्त इति चेन्न, सम्यग्दर्शनस्य
तत्रोत्पत्तिकारणस्य सत्त्वात्। न च पात्रदानेऽननुमोदिनः सम्यग्दृष्ट्यो भवन्ति, तत्र तदनुपपत्तेः।

तिरश्चामोघमभिधायदेशस्वरूपनिरूपणार्थं वक्ष्यति ---

एवं पंचिंदिय-तिरिक्खा पंचिंदिय-तिरिक्ख-पञ्जत्ता ॥ ८६ ॥

एतेषामोघप्ररूपणमेव भवेद्विवक्षितं प्रति विशेषाभावात् ।

स्त्रीवेदविशिष्टतिरश्चां विशेषप्रतिपादनार्थमाह---

है, परंतु देवायुके बन्धको छोड़कर शेष तीन आयुकर्मके बन्ध होने पर यह जीव अणुव्रत और महाव्रतको ग्रहण नहीं करता है ॥ १६९ ॥

तिर्यचोंमें उत्पन्न हुए भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव अणुव्रतोंको नहीं ग्रहण करते हैं, क्योंकि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव यदि तिर्यचोंमें उत्पन्न होते हैं तो भोगभूमिमें ही उत्पन्न होते हैं और भोगभूमिमें उत्पन्न हुए जीवोंके अणुव्रतोंका ग्रहण करना बन नहीं सकता है।

शंका --- जिन्होंने दान नहीं दिया है ऐसे जीव भोगभूमिमें कैसे उत्पन्न हो सकते हैं?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, भोगभूमिमें उत्पात्तिका कारण सम्यग्दर्शन है और वह जिनके पाया जाता है उनके वहां उत्पन्न होनेमें कोई विरोध नहीं आता है। तथा पात्रदानकी अनुमोदनासे रहित जीव सम्यग्दृष्टि हो नहीं सकते हैं, क्योंकि, उनमें पात्रदानकी अनुमोदनाका अभाव नहीं बन सकता है।

विशेषार्थ --- क्षायिक सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति मनुष्य पर्यायमें ही होती है। अतः जिस मनुष्यने पहले तिर्यचायुका बन्ध कर लिया है और अनन्तर उसके क्षायिक सम्यग्दर्शन उत्पन्न

हुआ है ऐसे जीवके उत्तम भोगभूमिमें उत्पत्तिका मुख्य कारण क्षायिक सम्यगदर्शन ही जानना चाहिये, पात्रदान नहीं । फिर भी वह पात्रदानकी अनुमोदनासे रहित नहीं होता है ।

इसप्रकार तिर्यचोंकी सामान्य प्ररूपणाका कथन करके अब उनके विशेष स्वरूपके निर्णय करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

तिर्यचसंबन्धी सामान्यप्ररूपणाके समान पंचेन्द्रियतिर्यच और पर्याप्तपंचेन्द्रियतिर्यच भी होते हैं ॥ ८६ ॥

पंचेन्द्रियतिर्यच और पर्याप्त-पंचेन्द्रिय-तिर्यचोंकी प्ररूपणा तिर्यचसंबन्धी सामान्य-प्ररूपणाके समान ही होती है, क्योंकि, विवक्षित विषयके प्रति इन दोनोंके कथनमें कोई विशेषता नहीं है ।

अब स्त्रीवेदयुक्त तिर्यचोंमें विशेषका कथन करने के लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणीसु मिच्छाइड्वि-सासणसम्माइड्वि-द्वाणे सिया पज्जतियाओ सिया अपज्जतियाओ ॥ ८७ ॥

सासादनो नारकेष्विव तिर्यक्षपि मोत्पादीति १ (मु. नोत्पादीति ।) चेन्न, व्ययोः साधर्म्याभावतो दृष्टान्तानुपपत्तेः ।

तत्र शोषगुणानां स्वरूपमभिधातुमाह ---

सम्मामिच्छाइड्वि-असंजदसम्माइड्वि-संजदासंजद-द्वाणे णियमा पज्जतियाओ ॥ ८८ ॥

कुतः? तत्रैतासामुत्पत्तेरभावात् । बध्दायुष्कः क्षायिकसम्यगदृष्टिकर्नारकेषु नपुंसकवेद इवात्र स्त्रीवेद किन्नोत्पद्यत इति चेन्न, तत्र तस्यैवैकरस्य सत्त्वात् । यत्र

पंचेन्द्रिय-तिर्यच योनिनी जीव मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८७ ॥

शंका --- सासादन गुणस्थानवाला जीव मरकर जिस प्रकार नारकियोंमें उत्पन्न नहीं होता है, उसी प्रकार तिर्यचोंमें भी मत उत्पन्न होओ?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, नारकी और तिर्यचोंमें साधर्म्य नहीं पाया जाता है, इसलिये नारकियोंका दृष्टान्त तिर्यचोंको लागू नहीं हो सकता है ।

इनमें शोष गुणस्थानोंके स्वरूपका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---
पञ्चेन्द्रिय तिर्यज्ज्ञ योनिनी जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत
गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ८८ ॥

शंका --- ऐसा क्यों होता है?

समाधान --- क्योंकि, पूर्वोक्त गुणस्थानोंमें मरकर ये उत्पन्न नहीं होते हैं ।

शंका --- जिस प्रकार बधायुष्क क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव नारकसंबन्धी नपुंसकवेदमें
उत्पन्न होता है उसी प्रकार यहां पर स्त्रीवेदमें क्यों नहीं उत्पन्न होता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, नरकमें एक नपुंसकवेदका ही **सभदाव** है । जिस किसी
गतिमें उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव उस गतिसंबन्धी विशिष्ट वेदादिकमें ही उत्पन्न होता है
यह अभिप्राय यहां पर ग्रहण करना चाहिये । इससे यह सिद्ध हुआ कि सम्यग्दृष्टि जीव मरकर
पञ्चेन्द्रिय तिर्यज्ज्ञ योनिनी जीवोंमें नहीं उत्पन्न होता है ।

क्वचन समुत्पद्यमानः सम्यग्दृष्टिस्तत्र विशिष्टवेदादिषु समुत्पद्यत इति गुह्यताम् । तिर्यगपर्याप्तेषु
किञ्च निरुपितमिति नाशङ्कनीयम्, तत्र प्रतिक्षाभावतो गतार्थत्वात् ।

मनुष्यगतिप्रतिपादनार्थमाह---

मणुस्सा मिच्छाइड्वि-सासणसम्माइड्वि-असंजदसम्माइड्वि-द्वाणे

सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ८९ ॥

सुगममेतत् ।

तत्र शोषगुणस्थानसत्त्वावरथाप्रतिपादनार्थमाह ---

सम्माभिच्छाइड्वि-संजदासंजद-संजदद्वाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ९० ॥

भवतु सर्वेषामेतेषां पर्याप्तत्वम्, नाहारशरीरमुत्थापयतां प्रमत्तानामनिष्ठन्ना-
हारगतष्टपर्याप्तीनाम् । न पर्याप्तकर्मदयापेक्षया पर्याप्तोपदेशः, तदुदयसत्त्वा-

शंका --- तिर्यच-अपर्याप्तोंमें गुणस्थानोंका निरूपण क्यों नहीं किया?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, अपर्याप्त तिर्यचोंमें एक मिथ्यात्व गुणस्थानको छोड़कर प्रतिपक्षरूप और कोई दूसरा गुणस्थान नहीं पाया जाता है, अतः विना कथन किये ही इसका ज्ञान हो जाता है ।

विशेषार्थ --- यहां अपर्याप्त तिर्यचोंसे लब्ध्यपर्याप्त तिर्यचोंका ग्रहण करना चाहिये । और लब्ध्यपर्याप्तकोंके एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है । अतः उनके विषयमें यहां पर अधिक नहीं कहा गया है ।

अब मनुष्यगतिके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

मुनष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यगदृष्टि और असंयतसम्यगदृष्टि गुणस्थानोंमें पर्याप्त भी होते हैं, ओर अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८९ ॥

इस सूत्रका अर्थ सरल है ।

मनुष्योंमें शेष गुणस्थानोंके सद्भावरूप अवस्थाके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संयतासंयत और संयत गुणस्थानोंमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ९० ॥

शंका --- सूत्रमें बताये गये इन सभी गुणस्थानवालोंको पर्याप्तपना प्राप्त होओ, परंतु जिनकी आहारक शरीरसंबन्धी छह पर्याप्तियां पूर्ण नहीं हुई हैं ऐसे आहारक शरीरको उत्पन्न करनेवाले प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीवोंके पर्याप्तपना नहीं बन सकता है । यदि पर्याप्त नामकर्मके उदयकी अपेक्षा आहारक शरीरको उत्पन्न करनेवाले प्रमत्तसंयतोंको पर्याप्तक कहा जावे, सो

विशेषतोऽसंयतसम्यगदृष्टीनामपि अपर्याप्तत्वस्याभावापत्तेः । न च संयमोत्पत्त्यवस्थापेक्षया तदवस्थायां प्रमत्तस्य पर्याप्तत्वं घटते, असंयतसम्यगदृष्टावपि तत्प्रसङ्गादिती? नैष दोषः, अवलम्बितद्रव्यार्थिकनयत्वात् । सोऽन्यत्र किमिति नावलम्ब्यत इति चेन्न, तत्र निमित्ताभावात् । किमर्थमत्रावलम्ब्यत इति चेत्पर्याप्तैरस्य साम्यदर्शनं तदवलम्बनकारणम् । केन साम्यमिति चेद्? दुःखाभावेन । उपपातगर्भसमूर्च्छज-शरीराण्याददानानामिव॑ (मु. ण्यादधानानामिव) आहारशरीरमाददानानां न दुःखमस्तीति पर्याप्तत्वं प्रमत्तस्योपचर्यत इति यावत् ।

पूर्वाभ्यस्तवस्तुविस्मरणमन्तरेण शरीरोपादानाव्दा दुःखमन्तरेण पूर्वशरीरपरित्यागाव्दा
प्रमत्तस्तदवस्थायां पर्याप्त इत्युपचर्यते ।

भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, पर्याप्तकर्मका उदय प्रमत्तसंयतोंके समान असंयत सम्यग्दृष्टियोंके भी निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्थामें पाया जाता है, इसलिये वहां पर भी अपर्याप्तपनेका अभाव मानना पड़ेगा । संयमकी उत्पत्तिरूप अवस्थाकी अपेक्षा प्रमत्तसंयतके आहारकी अपर्याप्त अवस्थामें पर्याप्तपना बन जाता है यदि ऐसा कहा जावे सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, इस प्रकार असंयत सम्यग्दृष्टियोंके भी अपर्याप्त अवस्थामें (सम्यगदर्शनकी अपेक्षा) पर्याप्तपनेका प्रसंग आ जायगा ?

समाधान --- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, द्रव्यार्थिक नयके अवलम्बनकी अपेक्षा प्रमत्तसंयतोंको आहारक शरीरसंबन्धी छह पर्याप्तयोंके पूर्ण नहीं होने पर भी पर्याप्त कहा है ।

शंका --- उस द्रव्यार्थिक नयका दूसरी जगह (विग्रहगतिसंबंधी गुणस्थानोंमें) आलम्बन क्यों नहीं लिया जाता है ?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, वहां पर द्रव्यार्थिक नयके अवलम्बनके निमित्त नहीं पाये जाते हैं ।

शंका --- तो फिर यहां पर द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन किस लिये लिया जा रहा है ।

समाधान --- आहारकसंबन्धी अपर्याप्त अवस्थाको प्राप्त हुए प्रमत्तसंयतकी पर्याप्तकोंके साथ समानताका दिखाना ही यहां पर द्रव्यार्थिक नयके अवलम्बनका कारण है ।

शंका --- इसकी दूसरे पर्याप्तकोंके साथ किस बातसे समानता है ?

समाधान --- दुःखभावकी अपेक्षा इसकी दूसरे पर्याप्तकोंके साथ समानता है? जिसप्रकार उपपातजन्म, गर्भजन्म या संमूर्छनजन्मसे उत्पन्न हुए शरीरोंको धारण करनेवालोंके दुःख होता है, उस प्रकार आहारशरीरको धारण करनेवालोंके दुःख नहीं होता है, इसलिये उस अवस्थामें प्रमत्तसंयत पर्याप्त है इस प्रकारका उपचार किया जाता है । अथवा, पहले अभ्यास की हुई वस्तुके विस्मरणे विना ही आहारक शरीरका ग्रहण होता है, या दुःखके विना ही पूर्व शरीर (औदारिक) का परित्याग होता है, अतएव प्रमत्तसंयत अपर्याप्त:

